Journal of East-West Thought
ISSN: *2168-2259 (online)*
(https://jetjournal.us/)
Volume 9, Issue 3 – Sep 2019

JOURNAL OF EAST-WEST THOUGHT

UGC CARE I

समकालीन आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त लोकसंस्कृति

डॉ. पंढरीनाथ शिवदास पाटिल,

हिंदी विभागाध्यक्ष, गंगामाई महाविद्यालय, नगाँव , धुले

साहित्य मानव समाज की सांस्कृतिक धरोहर है। साहित्य देश के इतिहास साहित्य और संस्कृति का निर्माण करता है। प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नये-नये रूप आकार लेते हैं। पुनरुत्थानोत्तर औद्योगिक क्रांति से विकसित पूँजीवादी व्यवस्था में जीवन की जटिलता को उसके यथार्थ रूप में साप्रेषित करने के लिए उपन्यास एक समुचित संवाहक एवं लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उपन्यास मानव जीवन की संपूर्णता को यथावत प्रस्तुत करने में सक्षम है। उपन्यास का काम इसे नये युग के नये मानव की वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना है जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुए हैं। उपन्यासकार के लिए आज कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। मानव जीवन के सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी पक्ष बहुत खुलकर आज उपन्यासों में आने लगे है। स्वाधीनता के बाद हिंदी उपन्यास साहित्य में अनेक विषयगत एवं रचनागत प्रयोग हुए हैं। उनमें आंचलिक बोध का भी महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। 'अंचल' से तात्पर्य ऐसे स्थान और जाति विशेष से है जो आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने आप में एक इकाई हो और जिसके जीवन की कुछ निजी विशेषताएँ हों। आचलिक उपन्यास का उद्देश्य इन निजी विशेषताओं का समग्र चित्रण करना रहा है। यह समग्र चित्रण उपन्यासकार लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति के परिप्रेक्ष्य में करता है। समकालीन आंचलिक उपन्यास में इसका व्यापक रूप से चित्रण मिलता है।

लोक संस्कृति में लोक का अभिप्राय लोकमानस से है जो सामूहिक रूप से समुदाय का प्रतीक है। लोक संस्कृति का स्पष्ट अर्थ है 'लोक' की संस्कृति। यह लोक स्वाभाविक मानव समाज की भावनाओं, विचारों, परंपराओं, रीति-रिवाज़ों एवं विभिन्न क्रियाकलापों का समन्वित रूप होता है। लोकसंस्कृति में 'लोक' के समग्र क्रियाकलाप प्रतिबिंबित होते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोकसंस्कृति का संबंध लोकमानस के विभिन्न क्रियाकलाप मात्र से नहीं बल्कि पूँजीपति, ज़मींदार और शोषित व्यवस्था के विरोध से भी है। विरोध का स्वर लोकसंस्कृति की प्रमुख ऐतिहासिक विशेषता है। लोकसंस्कृति एक व्यक्ति की निर्मिति न होकर सामूहिक आविष्कार होती है। हर क्षेत्र में रहनेवाले लोगों की अपनी नितांत निजी लोकसंस्कृति होती है। लोकजीवन, लोकविश्वास और लोक साहित्य एवं कलाएँ वास्तव में लोकसंस्कृति के अंदर समाहित एवं सुरक्षित हैं।

हम देख सकते हैं कि आंचलिकता की संकल्पना में अंचल विशेष के लोकजीवन, लोकविश्वास एवं लोककलाएँ मुख्य हैं। आंचलिकता का संबंध जिस प्रकार वहाँ की प्रकृति से होता है उसी प्रकार वहाँ के लोक से होता है। किसी भी अंचल, चाहे गाँव हो या शहर, जाति, जनजाति, लोकजीवन में मानव की अंतर्वृत्तियों का मौलिक रूप मिलता है। भू प्रकृति, वेशभूषा, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, खानपान आदि के माध्यम से यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है। वैसे ही अंचल विशेष के लोगों के जीवन में संस्कारों एवं विश्वासों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी भी देश या प्रदेश के इतिहास की जानकारी वहाँ की संस्कृति के आधार पर होती है और

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

संस्कृति की पहचान उस अंचल-विशेष के लोगों के धार्मिक विश्वास, रूढ़ियों, परंपराओं, रस्म-रिवाज़, लोकाचार, अंधविश्वास, विवाह-संस्कार, जन्म-संस्कार, मृत्यु-संस्कार और अन्य अनेक संस्कारों से होती है। लोक साहित्य एवं कलाओं के माध्यम से संस्कृति का जो रूप हमारे सामने आता है, उसमें व्यक्ति लुप्त प्राय होता है। लोकसाहित्य, संगीत, नृत्य आदि कलाओं के द्वारा अभिव्यक्त सुःख-दुःख, हास्य, रुदन तथा शोक-आह्लाद सभी लोकमानस की कहानी कहते हैं। लोकसंस्कृति के सही दर्शन लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकसंगीत, लोकनृत्य, पर्व-त्यौहार तथा दैनंदिन जीवन के हर्ष-उल्लास में होते हैं। किसी भी जनसमुदाय की समग्र मानसिकता एवं अस्मिता को परखना है तो उस जनसमुदाय के लोकजीवन, लोकविश्वास एवं लोकसाहित्य को परखना चाहिए अर्थात् किसी जाति, जनजाति, धंधा एवं अंचल विशेष की अस्मिता वहाँ की लोकसंस्कृति के माध्यम से प्रकट होती है और साथ ही इसी के माध्यम से अपना स्थान भी पा लेती है।

समकालीनता के दौर में हम देख सकते हैं कि विविध अंचलों, जातियों, जनजातियों के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक क्षेत्रों में टूटन हो रही है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा, शहरों में संपर्क घना हो गया और इसके फलस्वरूप अंचल विशेष की भावात्मक मानसिकता व्यावसायिकता, बौद्धिक उपयोगिता और चतुराई से संपन्न होती गई। संबंधों और मूल्यों में बदलाव आया और प्रकृति और पर्वों के प्रति रागात्मक लगाव कम होता गया। राजनीतिक प्रभाव ने एक ओर लोकजीवन को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया तो दूसरी ओर उनमें भयानक टूटन, स्वार्थ, व्यस्तता और असुरक्षा को भर दिया। आज इन अंचलों में जो जीवन हम देखते हैं वह पुरानी परंपराओं एवं संस्कारों से भिन्न अन्य किसी बाहरी शक्तियों से त्रस्त और दूषित लोकजीवन है। समकालीन उपन्यासकारों ने अपने आंचलिक उपन्यासों में 'लोक' की समग्रता

को महत्त्व दिया है। लोक की समग्रता में ही भारतीयता की पहचान निहित होती है। आंचलिक उपन्यासों में कथानायक के लिए कोई स्थान नहीं रहता बल्कि वह स्थान अंचल विशेष की विशेषताएँ ही ले लेता है। हर अंचल की अपनी अलग अस्मिता है। बाहरी दृष्टि से मात्र भिन्नता दिखती है आंतरिक रूप से सारा अंचल चाहे गाँव हो या शहर, जाति हो या जनजाति या शिल्प केंद्रित समाज, सब भारत का ही प्रतिरूप है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के ये सारे प्रतिरूप तेज़ी से बदले हैं या बदल रहे हैं। इसी बदलाव को पकड़ने की कोशिश मैत्रेयी पुष्पा, वीरेंद्र जैन, विवेकी राय, रामदरश मिश्र, कृष्णा सोबती, द्रोणवीर कोहली, राकेशकुमार सिंह, मिथिलेश्वर, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, गोविंद मिश्र, शैलेश मटियानी, संजीव, मनमोहन पाठक, तेजिंदर, श्रवणकुमार गोस्वामी, जगदीश चंद्र, रामन नायर, अब्दुल बिस्मिल्लाह, शिवप्रसाद सिंह आदि लेखकों ने अपने गाँव, शहर, जाति, जनजाति और धंधा-केंद्रित आंचलिक उपन्यासों के जरिये की है।

भारत एक विशाल देश है। यहाँ अनेक जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं का संगम है। पंजाब में मुख्य रूप से हिंदू, मुस्लिम और सिक्ख तीनों धर्मों के लोग रहते हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'जिंदगीनामा' में विभाजन पूर्व पंजाब की धड़कती जिंदगी का लुभावना चित्र अंकित किया गया है। हिंदुओं और सिक्खों में अनेक समान उपजातियाँ हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित शाह परिवार हिंदू और चाची सिक्ख परिवार की है, जिसका प्रेम गणपत शाह से हो गया था। लेखिका सांप्रदायिकता को विष कहकर समाज में फैल रहे उसके प्रभाव को ध्वस्त कर देती है। चाहे हिंदू हो या मुस्लिम, दोनों प्रकार की सांप्रदायिकता का नेतृत्व प्रायः अभिजात्य वर्ग के हाथ में है। जो स्वयं नहीं लड़ता बल्कि अपने हितों के लिए साधारण लोगों को आपस में लड़वाता रहता है। इस अंचल प्रदेश की विशेषता यह थी कि यहाँ के हिंदू और मुसलमान आपस में बड़े स्नेह से

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

रहते थे। मसीत गुरुद्वार, गुरुनानक, बाबाफरीद, बारिश शाह, बुल्लेशाह, मियांमीर, और कज्जू भगत की बोली गाँव के सभी लोग रटते रहते हैं। बैसाखी, लोहड़ी, शब-ए-रात, ईद सभी मिलजुलकर मनाते हैं। शाह भी कटाई के समय सभी किसानों को खुशी-खुशी भोजन करवाता है जिसमें हिंदू, मुस्लिम का कोई अंतर नहीं रहता। यहाँ शाह इतिहास का स्मरण करके लेखिका हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रमाण देती है, साथ ही आर्य समाजी लोगों के आगमन से आए हुए बदलाव को भी दर्शाती है। शहरों के प्रभाव के कारण गाँव में भी धर्म को लेकर मारकाट आरंभ हो गई थी। "तुम्हारा नाम क्या गदर। तुम्हारा काम क्या गदर। तुम्हारा पेशा गदर। तुम्हारा ईमान क्या गदर।" देश का राजनीतिक घटनाचक्र सांप्रदायिक ताकतों को भटकाता है। राजनीतिक घटनाचक्र से प्रभावित ग्रामीण जनजीवन का अत्यंत सफल व सूक्ष्म चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है। 'जिंदगीनामा' के पात्र धर्म के भाव में आकंठ डूबे हैं वे अग्नि देवता, सूर्य देवता, अन्न देवता और साधु-संत महात्माओं की पूजा करते दिखाई देते हैं। त्यौहारों के पीछे धार्मिक भावना ही कार्य करती है। धर्म की आस्था लोगों को पुण्य कार्य की ओर प्रेरित करती है, साथ ही पाप का भय अपराध से दूर करता है। गाँव के हिंदू मुसलमानों के धार्मिक विचारों में तो अंतर होता है लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक आचार-विचार में अंतर दिखाई नहीं देता। ग्रामीण लोगों के जीवन में विश्वासों के साथ अंधविश्वास भी जुड़ा रहता है। 'जिंदगीनामा' में सुक्खानी के पुत्र ने नींद से खाँस खाँस कर दूध फेंक दिया, तब भूत-प्रेत का वास कहकर लड़के के चादर के नीचे नींबू और धरेक के पत्ते और लोहा रखा जाता है। जमीला का विश्वास है कि आवानों के लड़के की रूह गाँव में भटकती है, मामू मुसल्ली ने जिसका कत्ल किया था। इसके अलावा ग्रामीण लोगों के बीच अनेक रीति-रिवाज हैं जिनका संबंध अंधविश्वासों से है। नजर उतारने के लिए हथेली में थूकना, कनाली से बाहर आटा गिरने से मेहमान की प्रतीक्षा करना आदि ग्रामीण जनजीवन में प्रचलित अंधविश्वासों के अनेक उदाहरण हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। लेकिन अफसोस की बात यह है कि धर्म आज बहुत संकुचित हो गया है। इतना संकुचित कि 'धर्म' शब्द सिर्फ संप्रदाय-विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। धर्म का बदला रूप शहर और गाँव में ही नहीं, विभिन्न जातियों और जनजातियों के बीच जंगल में भी हम देख सकते हैं। जनजातियों के धार्मिक जीवन अनेक रूढ़ियों से जकड़े हुए हैं। वे कभी उससे मुक्त होना नहीं चाहते। अगर चाहते भी तो समाज उसका अवसर नहीं देता। धर्म के प्रति आस्था से ज्यादा अंधविश्वासों का पालन ही इन लोगों का जीवन है। 'अल्मा कबूतरी' में भय से परिचालित होकर शुभ की प्राप्ति और अशुभ के निवारण हेतु पूजा-पाठ, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र आदि का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। लोकसंस्कृति के धार्मिक पक्ष के अंतर्गत जाति-विशेष के लोग भूत-प्रेत, गंडा ताबीज, शकुन-अपशकुन, रोग-मृत्यु आदि से संबंधित अंधविश्वासों तथा अंधपरंपराओं को लोकविश्वास मानते हैं। राणा के बीमार हो जाने पर डेरे के लोगों को लगा कि उस पर जमुनी का साया आ गया है। उसे देखकर भजनी कहती है "हाय माता जमुनी चुड़ैल ने धर दबाया राणा की दवा करने के स्थान पर बस्ती के लोग उसके सिर से भूत उतारने की तैयारी करते हैं।

'सागर की गलियाँ' में तुरुत्त के मछुआरों की कथा केंद्र में है। सागर पर निर्भर मछुआरों का अलग किस्म का जीवन चित्रित करके रामन नायर ने दक्षिण प्रदेश केरल के समुद्र तट पर जिंदगी बितानेवाले मछुआरों की जिंदगी का, उनके बोलचाल, रहन-सहन, विश्वास, रीतिरिवाज का यथार्थ चित्रण किया है। मछुआरों के बीच में यह विश्वास है कि सागर देवता उन से कभी न बिगड़ें। इसलिए बडे-बडे तूफानों में भी वे सागर में मछली पकडने के लिए जाते हैं। काली माता पर उन लोगों का पूरा भरोसा है। वे लोग जितना कमाते हैं उतने में कुटुंब समाते हैं। वह कभी कल के लिए कमाकर नहीं रखते। उनका कहना है कि 'मछए का धन

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

सागर मैया की गोद में है। वह देगी तो वे खुश हैं नहीं तो वे भूखे मरेंगे। मछली ही मछुए के लिए ईश्वर है।" उन लोगों का विश्वास है कि सागर मैया ने पहले-पहल मछली का रूप लिया था, इसलिए मछुए अपने को आदिम मानते हैं। कभी-कभी अपने को वेदव्यास की परंपरा को भी मानते हैं। मछुआरे कर्म और कर्तव्य पर जीते हैं। कर्म ही उसका भगवान है. वही उसका सहारा भी।

किसी व्यक्ति या समाज के जीवन निर्वाह का ढंग उसके रीति-रिवाज़ के अंतर्गत आता है। इस दृष्टि से गाँवों में लोगों के रहन-सहन का ढंग अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। ग्रामीण जीवन में अनेक रीति-रिवाज हैं जिन्हें ग्रामीण लोग पीढी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करते आ रहे हैं। 'तकसीम' उपन्यास के थोहा गाँव में प्रचलित रीति-रिवाजों को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे जिंदगी जीना उतना आसान नहीं है। जब किसी की मृत्यु होती है तब उससे जुड़े अनेक रिवाज होते हैं। मृत्यु के बाद घर की औरतें मलिन ओढ़नियाँ ओढ़ती हैं क्योंकि वर्ष पर्यंत नया पल्ला सिर पर रखने का प्रतिषेध था। यदि रखना है तो मैला करके रखना है। ताकि प्रकट हो कि घर में कोई मौत हुई है। मृत्यु के तेरहवें दिन पर 'फूड़ी छंड़ना' एक प्रतीकात्मक प्रथा थी। तेरह दिन भूमि पर बैठकर घर के सारे लोग शोक मनाते हैं। अंतिम क्रिया 'धरमसांत' के दिन प्रातः ब्राह्मणों को सात्विक भोजन देकर दक्षिणा में पाँच कटोरी, पाँच गिलास दिए जाते हैं, इसके साथ मरणशौच का अंत हो जाता हैं। पत्नी की मृत्यु पर पति का रोना असहज व्यवहार माना जाता था और निपट अस्वाभाविक भी। इसलिए हकूमत पत्नी की मृत्यु पर रोता नहीं, सारे दुःखों को मन के अंदर दबाकर रखता है। 'धोती निचोड़ना' थोहा और लाहौर के आसपास के इलाकों में प्रचलित एक प्रथा थी। यह एक प्रतीकात्मक प्रथा है। मृत स्त्री की अंत्येष्टि के पश्चात जब रँडोरा मृतस्नान करके अपनी गीली धोती उतारकर फेंक देता है, तब कोई उठकर उस धोती को निचोड़ने को उद्यत होता है। यह इस बात को सूचित करता है कि वह अपनी बेटी, बहन का रिश्ता रँडुए के साथ करने को तैयार है। लेकिन एक विधवा के साथ ऐसी कोई प्रथा नहीं थी। दूसरा विवाह करने की उसे अनुमति नहीं थी।

संथाल हमारे देश के अति प्राचीन लोगों में से हैं। ये बंगाल के वीरभूम, ओडिशा के कटक और बिहार के पलामू, हजारीबाग, रांची, संथाल परगना आदि जिलों में रहते हैं। इन लोगों की सामाजिक रीतियाँ बड़ी अनोखी हैं। संथालों के रिवाज के अनुसार पति के रहते पत्नी दूसरे पुरुष से संबंध करे तो ऐसी औरत का जीते जी क्रिया-कर्म कर देते हैं। संजीव कृत 'धार' में मैना का जीते जी क्रियाकर्म किया जाता है। बांसगड़ा गाँव में भ्रष्ट होते ही आदमी का श्राद्ध किया जाता है। दस गाँवों के चौधरी लोग लॉबी में जमा होते हैं और शाल के पत्ते लिए एक आदमी घोषणा करता है कि रात को लॉबी की बैठक बांसगड़ा में होने जा रही है। मैना फोकल के रहते मंगर के साथ रहने के कारण उसका श्राद्ध कर देता है। उनका मृत्यु संस्कार भी अनोखा होता है। जब मैना के बच्चे की मृत्यु होती है तब दो महीने तक उसे अलग कटोरी में खाना दिया जाता है। संथालों के सबसे बड़े देवता माराबुरू हैं। बड़े पेड़ को माराबुरू देवता मानकर संथाल इसी को पूजते हैं। संथालों के छोटे-छोटे घर फूस और खपड़े के थे। बांसगड़ा के सभी घरों में एक बात आम थी- दीवारों का ऊपरी भाग सफेद चिकनी मिट्टी से और नीचे स्याह सलेटी मिट्टी से लिपा हुआ था। बांसगड़ा के ब्राह्मणों का घर ऐसा है कि अंदर चले जाएँ तो गंदगी से सर फटने लगेंगे। लेकिन आदिवासी का घर एक भी नहीं मिलेगा, न अंदर से न बाहर से, चाहे वे सुअर ही क्यों न पोसे। आदिवासी मजूरन औरत अपने को साफ-सुथरा रखने के लिए सर पर एक गमछा रखकर ढोती है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में बुनकर लोग कबीर को अपनी परंपरा का मानकर उनके व्यक्तित्व पर गर्व करते थे क्योंकि कबीरदास एक बहुत बड़े कवि थे, वे उन्हीं की जाति के थे और उसी बनारस में रहकर

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

कपड़ा बुनते थे। बुनकरों की बिरादरी में अब डॉक्टर, वकील सब हो गए हैं। सारे बुनकर अपने बच्चों को स्कूल न भेजकर उसे भी जुलाहा बनाकर अपने साथ काम के लिए ले जाते हैं। बनारस के जुलाहों की बिरादरी में कोई लफड़ा नहीं है। बारातियों को खाना खिलाना भी जरूरी नहीं। जाड़ा है तो चाय और गर्मी है तो शरबत से ही काम चलाया जाता था। पाँच बर्तनों से ज्यादा दहेज न देते और न लेते थे। वर घोड़े पर आते हैं, घराती-बराती सब एक साथ खड़े हो जाते हैं। दरवाजे पर वर के पहुँचते ही बेलबट्टा होता है और महतो उन्हें पान खिलाते हैं। सभी लोग पान वाली सेनी में दस-दस या पच्चीस-पच्चीस पैसे डालते जाते हैं। यह पैसा दोनों पक्षों के नाइयों और धोबियों के बीच बाद में बाँट दिया जाता है।

एक-एक अंचल, जाति और जनजातियों के भोजन, खाना पकाना आदि अलग होते हैं। किसी अंचल में अतिथि के लिए गुड़ का शर्बत दिया जाता है तो किसी अंचल में लस्सी। निर्धन ग्रामीण अपनी हैसियत के अनुकूल भोजन करते हैं। आदिवासी लोग अपने घर आए मेहमानों को फल, कंद, मूल आदि देते हैं। मिथिलेश्वर कृत 'यह अंत नहीं' उपन्यास में जमींदारों के घर के भोजन का विवरण दिया गया है। जब श्रवणसिंह का पुत्र आगम कॉलेज जाने लगता है तब श्रवणसिंह की पत्नी द्वारा उसके लिए शुद्ध घी के खजूर तथा नमकीन, काजू की बरफी, कोहाड़े का मुरब्बा और बेसन का लड्डू आदि खाद्य सामग्री भेज दिया जाता है और जब वह गाँव आता तो उसके खानपान में हर रोज कुछ न कुछ नया और विशिष्ट भोजन अवश्य जोड दिया जाता है। कभी मैंग का हलवा, केखा दही अउरी कभी उड़द का बार, मुर्ग मुसल्लम, कभी रेहम छली. कभी बैंगन का भर्ता सेवई, मालपुआ, आलू कटहल का दम, मटर, पनीर, मखनी दाल, रसदार बडी रडतो कभी-कभी खट मिटठी भी। जमींदार लोगों के घरवालों के बीच में ऐसी चिंता है कि खानपान से ही घर की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा का पता चलता है इसलिए घर का खाना अच्छा बने। श्रवणसिंह के यहाँ नौकरानी है चुनिया। अपना काम निपटाकर वापस जाने पर उसे श्रवणसिंह की पत्नी सड़ा हुआ पिछले दिन का खाना और जूठा खाना ही देती है. क्योंकि उनकी नजर में नौकरानियों के लिए यही काफी है। गरीब के घर में हमेशा किसी न किसी खाद्य सामग्री का अभाव होता रहता है। लेकिन चुनिया को मालूम है कि ऐसी परिस्थितियों को कैसे पार करके घरवालों को खुश रखना है। जब उसके बाप, माँ, और भाई काम से थककर आते हैं तब वह दाल और सब्जी के अभाव में भात और बुट-प्याजी की तरकारी बनाती है और जमाकर रखे दही को मथकर मट्ठा तैयार करती है क्योंकि उसे मालूम है कि मट्ठ भात और बुट प्याज की तरकारी उसके बापू को खूब पसंद है। कभी-कभी मजदूरी में चौरठ-गुड़ मिलते हैं। चौरठ गुड़ से ढकनेसर बनाया जाता है। बिहार प्रांत के लोगों के बीच ढकनेसर एक विशिष्ट भोजन है। 'इदन्नमम' उपन्यास में जब दादा के घर के सारे छोटे बच्चे एक साथ मिलकर खाने के लिए बैठते हैं, तब बड़ी खुशी में गाते हैं "आलू भाटा की तिरकाई नाचे मुन्ना की मताई" बउ और मंदा को कुछ दिन अनवरी के घर छिपकर रहना पड़ता है तब बऊ उलझन में पड़ जाती है कि कैसे मुसलमान के घर खाए? इसलिए वह मंदा को समझाती है कि भूखी रहने पर भी मुसलमान का खाना नहीं खाना है, गोस-मोस वे लोग नहीं खाते हैं, लेकिन मुसलमान होने के नाते अनवरी खाती है। अनवरी बुआ और मंदा के लिए किसी ब्राह्मण के घर से खाना मँगवाकर देती थी। लेकिन मंदा को छिपकर अनवरी बुआ के बावर्ची खाने में आकर उनके साथ सालन और रूमाली रोटी खाना अच्छा लगता था।

निम्नवर्ग की सारी चिंताएँ रोटी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इसका दर्दनाक चित्रण जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने 'मुर्दाघर' उपन्यास में किया है। गली की रंडियों के छोटे छोकरे होटल के पीछे के दरवाजे खुलने की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। "भरा है लब लब सब कुछ एक में। चावल... रोटी... पाव... हड्डी... दाल... मच्छी... शोरबा...

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

आज का कल का सड़ा हुआ बदबू। सब दौड़ने लगते है।" गली के लड़के उस जूठन को खाने के लिए कुत्ते और सुअरों के साथ दौड़ पड़ते हैं। तेजिंदर कृत 'काला पादरी' में चित्रित उरांव लोग विशेष अवसरों पर ही शिकार करते हैं। दैनिकी शिकार तथा विशेष अवसरों पर किए जानेवाले शिकार में अंतर केवल इतना ही है कि दैनिक शिकार की जब भी इच्छा या आवश्यकता हुई, कर लेते हैं तथा इसमें किसी का साथ आवश्यक नहीं समझा जाता है। जितना भी अन्न वे उत्पादन कर लें पर भी कोई फायदा नहीं क्योंकि परिश्रम के पश्चात भी पूरा अन्न उपलब्ध नहीं हो पाता है, रायसाहब, नेताजी, विधायक जी जैसे शोषक लोग इन्हें अपनी भूख मिटाने का अन्न तक जुटाने के लिए अवसर न देकर उनका रक्त चूसते रहते हैं। इनका मुख्य उद्यम खेती करना है। जंगली कंद, मूल, फल आदि भी इनके भोजन में बहुत सहायक है।

वस्त्राभूषण प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशेषता होते है। वस्तुतः एक ही संस्कृति में भिन्न-भिन्न युगों में वस्त्रों के प्रकार और धारण करने की विधि में परिवर्तन होता रहता है। उत्तर भारतीय वस्त्रों की अपनी निश्चित विशेषता है। समाज के विभिन्न वर्गों के पुरुष और स्त्रियों के वस्त्र भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। वेशभूषा संस्कृति की व्यापक परिधि में समाहित होती है। ग्रामीण समाज को खानपान, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि बातें शहरी समाज से अलग करती हैं क्योंकि गाँवों की अपनी निजी जिंदगी और उससे जुड़ी अपनी निजी संस्कृति है जहाँ कोई बनावटीपन के लिए स्थान नहीं है। लेकिन आज के दौर में शहरों के संपर्क के कारण गाँवों के रहन-सहन और खान-पान में जो परिवर्तन आया है वही परिवर्तन वेशभूषा में भी दिखाई देने लगा है। गाँवों में वृद्ध या पुराने विचारों के लोग परंपरागत पोशाक पहनते हैं तो युवक शहरी प्रभाव या नए जमाने की तड़क-भड़क से प्रभावित होकर अपनी अलग ही वेश-भूषा धारण करते हैं।

वस्त्रों का प्रयोग दो रूपों में होता रहा है। निचले भाग को ढँकनेवाले वस्त्र अधोवस्त्र कहलाते हैं, जबकि शरीर के ऊपरी भाग में पहने जानेवाले वस्त्रों को अधिवास कहा जाता है। उत्तर भारत में पुरुषों द्वारा उपयोग में लाए जानेवाले अधोवस्त्र में धोती और पायजामा प्रमुख थे। अधोवस्त्र के रूप में हिंदू स्त्रियाँ धोती, साड़ी तथा लहंगा तथा मुस्लिम स्त्रियाँ लहंगा, चूड़ीदार, पायजामा, सलवार आदि पहनती थीं। पुरुषों के वस्त्रों में कुर्ता, झंगा, जामा, नीमा, पगड़ी आदि प्रमुख थे।

विवेकी राय कृत 'समरशेष है' उपन्यास का प्रमुख पात्र संतोषी पंडित हमेशा धोती पहनता है। पढ़ा-लिखा कॉलेज का अध्यापक होने पर भी वह अपनी परंपरागत वेशभूषा का त्याग नहीं करता। इस धोती को लेकर एक अच्छा प्रसंग विवेकी राय ने 'सोनामाटी' में किया है। भोजपुरी वर की वेशभूषा बड़ी सुंदर होती है। मगनचोला को शादी के अवसर पर धोती पहनना पड़ा लेकिन उसे धोती पहनना मालूम नहीं है। जब विवाह के अवसर पर अग्निस्थापन क्रिया के बाद पिऊरी धोती दाता द्वारा वर को धारण करने के लिए दिया जाता है, तब उसे पता नहीं कैसे धोती पहनना है। इसलिए भरी सभा में लड़कियाँ उसका परिहास करने लगीं। वह तो गाँव का बड़ा नेता है, शिक्षित है, सब कुछ है लेकिन धोती पहनना नहीं आता। उस वक्त मगनचोला को एक बात महसूस हुई कि "धोती साधारण वस्त्र नहीं, वह गाँव का प्रतीक है। वह छूटी तो गाँव छूटा। उसे याद आया कि माँ का कहना न मानकर उसने कितनी गलती की। बार-बार वह कहती रही बच्चा जी विवाह के दिन पियरी धोती पहनना पड़ेगा। सीख लो, नहीं तो बहुत हँसी होगा सो वही हुआ। गाँव में रहकर वह गाँव से कितना दूर हो गया।"" संजीव कृत 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में चित्रित थारुओं का पहनावा बड़ा अनोखा है। बरसों पहले ये लोग लंगोटी ही पहने रहते हैं। पर अब शरद ऋतु में एक बड़ा सा कोट पहन लेते हैं। सिर पर ऊनी कपड़ों की काली टोपी तथा कंधे पर कंबल, इनके साथ हर समय रहता है। मेले, उत्सव, त्यौहारों में

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

स्त्रियाँ सज-धजकर जाती थीं। गहने पहनने का इन्हें बहुत शौक है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में बनारसी बुनकर जिसे खून-पसीना एक करके अपनी मेहनत और फन से तैयार करते हैं, उस साड़ी को बुनकरों की औरतों ने कभी छुआ तक नहीं। ईद के रोज बुनकरों की बीवी मामूली कपड़े के सलवार से ही अपना तन ढँकती है। अलीमुन की सबसे बड़ी आशा थी मरने से पहले एक बार बनारसी साड़ी पहनूँ, लेकिन यह उसके नसीब में नहीं था। हाजी अमीरुल्ला बनारस के बड़े गिरस हैं, लेकिन बंगलूरू जाना है तो वह लुंगी पहनकर जाता है। उनका दावा है कि बड़े लोग अपने वेशविन्यास पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। इसी में उनका बड़प्पन है। इनके बड़े भाई हाजी मतिउल्ला तो लुंगी पहनकर विदेश भी जा चुके हैं। स्त्रियाँ घर से बाहर निकलते वक्त पर्दा करती हैं और मुँह पर नकाब पहनती हैं। बाहर दूसरों को सिर्फ आँख मात्र ही देखी जा सकती हैं। इस प्रकार विभिन्न अंचल, जाति, जनजाति तथा शिल्प केंद्रित लोगों की वेशभूषा अपनी संस्कृति, भू-भाग, जलवायु के अनुसार भिन्न होते हैं लेकिन समय के अनुसार उनकी वेश-भूषा में भी परिवर्तन आ गया है।

लोकसाहित्य का प्रत्येक समाज व देश के जीवन में बहुत महत्त्व होता है। लोक की वास्तविक संस्कृति उसके मौखिक साहित्य में ही अभिव्यक्त हुई है। इसमें सदियों से शोषण, उत्पीड़न तथा सामाजिक कुरीतियों की शिकार जनता के जीवन की आर्थिक, सामाजिक विषमता तथा उसकी विद्रोही चेतना का सजीव चित्रण हुआ है। लोक साहित्य की विभिन्न विधाएँ हैं- लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा एवं लोकनृत्य आदि। लोकसंस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए उपन्यासकारों ने लोकसाहित्य का प्रयोग किया है। लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण कार्य है- विशाल जनसभ्यता का उद्घाटन । ग्राम गीतों द्वारा ग्राम संस्कृति का ज्ञान होता है। इन लोकगीतों में न केवल हमारी संस्कृति का मार्मिक इतिहास सुरक्षित है बल्कि प्रतिदिन के सामान्य कार्यों में भी वे सहज ही अपनी अभिव्यक्ति पाते हैं। गाँव में आज स्त्रियाँ झाड़ू देती हुई, दूध दुहती हुई, दही बिलोती हुई गाय भैंसों की सेवा करती हुई गाती हैं। स्त्रियाँ ही नहीं, गाँव के पुरुष लोग भी दैनिक कार्य को बिना संगीत की लय के सहारे नहीं करते। हल चलाते, कपड़ा बुनते, मजदूरी करते, खेतनिराते, धान काटते वक्त गीत गाकर आह्लाद के वातावरण का निर्माण करते हैं। "लोकगीत का प्रयोजन लोक का ही मंगल, लोक का ही सुख-दुःख निरूपण, लोक के ही उत्सव और लोक की ही आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। लोकगीत सामान्य तथा संस्कार धर्म, श्रुत, श्रम, जाति, व्रत, त्यौहार मेले पर्व, उत्सव, अनुष्ठान, मनोरंजन, खेती, अनुभव वीरगाथा, इतिहास आदि से संबंधित होते हैं।

साधारण जनमानस के पास पुस्तकों पर आधारित व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता, लेकिन ये लोग अशिक्षित और असंस्कृत होने के बावजूद संवेदनशील, जीवनमूल्यों के पक्षधर तथा धर्म के प्रति आस्थावान होते हैं। इन अशिक्षित लोगों के दुःख-दर्द, हर्ष-विषाद, जीवन-मृत्यु आदि मानवीय संवेगों को लोकगीतों में देखा जा सकता है। द्रोणवीर कोहली कृत 'तकसीम' उपन्यास में रामरखी निपट निरक्षर थी लेकिन बहुत से दोहे, कवित्त कंठस्थ थे। जब पति उसे मारता है, तब वह बड़े दुःख से पति से रूठ कर पति के प्रश्नों का उत्तर गीतों में ही देती है। "दोल दमामा दुकड़ी / संहाई सखफेर / करनेगा सो भरन गे तू क्यों भयो उदास' रामरखी घर के एक-एक कार्य करने के साथ-साथ गीत गुनगुनाती रहती है। बच्चे के जन्म पर गाए जाने वाले लोकगीत 'सोहर' या 'सरियाँ' कहलाते हैं। कुछ अंचलों में ये गीत बारह दिनों तक गाए जाते हैं और 'बरही' अर्थात बच्चे के जन्म के बारहवें दिन ही उनका समापन होता है। राकेश कुमार सिंह कृत 'जहाँ खिले हैं रक्त पलाश' में घटवारों के बीच में प्रचलित कुछ गीतों का उल्लेख लेखक नन्दू घटवार के माध्यम से किया गया है- "ए – हे - हे - है.... माटी के बकनू आं हो / ए - हे - हे - हे माटी के बकनू आं हो/मीरा म डी के बलमुआं/जियो जोयो हो धरेला /

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

नदिया को पार गइसे, रोजी जगावे रे"10 अर्थात रोज़ी रोटी कमाने नदी के पार गए मेरे प्रियतम अब तक लौटे क्यों नहीं? पानी में गल तो नहीं गए?

'शैलूष' में नटों के लिए समय चाहे दुःख का हो या सुख का, वे लोग ढोलक पर थाप देकर गीत गाते रहते हैं "आहो रामा मानिक हमरो हेरइल हो रामा / आहो रामा ओहो रे जमुनवा के चिकनी मटियवा / चलता पांव बिछलइले बो रामा""। ये चैत के गीत हैं। भोजपुरी लोकगीत का भी उल्लेख इसमें है। भोजपुरी गीत वे अलगोजा से बजाकर गाते हैं। नट आल्हा, नाच गान, कसरत और आसन सब कुछ के साथ अलगोजा भी बजाते हैं। 'गगन घटा घहरानी' में तपेसर के ओसारे पर बड़ी रात तक गाने बजाने हँसी ठट्ठे का कोलाहल होता रहता है। बरवाड़ीह गाँव में गीत गाने के लिए पर्व, त्यौहार का आसरा नहीं देखा जाता। कुछ ढोलक लेकर पहुँच जाते हैं तो कुछ झाल, हारमोनियम आदि लेकर आते हैं। बलराम पांडे को संगीत का विधिवत ज्ञान भले ही न हो, आवाज़ में जो दर्द है उसके सभी कायल हैं। तपेसर के साथ मिलकर सब गाते हैं "गगन घटा घहरानी साधो / गगन घटा घहरानी / पूरब दिसि सों उठी बदरिया/रिमझिम बरसत पानी / साधो गगन घटा घहरानी 12 लोकगीत लोकसंस्कृति के प्राणाधर हैं। लोग अपनी खुशी और दुःख की अभिव्यक्ति लोकगीतों के द्वारा करते हैं। लोकसाहित्य के अंतर्गत लोककथा की विशेष महत्ता है। एक कान से दूसरे कान में, एक मुख से दूसरे मुख में, एक मन से दूसरे मन में गूँजती हुई लोककथा निरंतर बहती रहती है। लोककथाएँ मानव की आदिम व पारंपरिक प्रथाओं और उसके विभिन्न जीवन मूल्यों एवं विश्वासों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें विभिन्न संस्कृतियों, वहाँ के खानपान, सामाजिक आचरण, राजनीति सभी का उल्लेख होता है। आंचलिक उपन्यास मुख्य रूप से लोकसंस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। लोककथाएँ लोकसंस्कृति की संरक्षिका हैं। जनजातियों में अनेक लोककथाएँ प्रचलित होती हैं जिन्हें वे लोग अपने पूर्वजों से सुनते आए हैं। इन लोगों का इन कथाओं पर पूर्ण विश्वास होता है। 'अल्मा कबूतरी' में कबूतरा जनजाति स्वयं को रानी पदमिनी की संतान कहती है। इनके बीच इससे जुड़कर एक कहानी भी प्रचलित है। जब कदम राणा को जन्म देती है तब बच्चे की छठी के अवसर पर मलिया सबको कुनबी कथा सुनाती है। शंकर महादेव ने अपने भक्तों को कुनबी नाम दिया। लेकिन देवता के संग हैवान भी पैदा हुआ था। एक दिन कुनबियों ने धोखे से ऋषि की गाय का वध कर दिया। ऋषियों ने शाप दे दिया कि तुम कलंकी होकर पाप ढोते ढोते मरोगे। राक्षसों को खाने के लिए कुनबियों को गुफा मैं बंद कर दिया गया। सारे कुनबी खत्म हो गए। तब देवता ने ऋषियों का तप खंडित करने के लिए नृत्य कला में निपुण नर-नारी को पैदा किया। राक्षसों से नर-नारी कुनबियों की आजादी माँगी। लेकिन सारे कुनबियों को राक्षस ने पहले ही खा लिया था। इसलिए शंकर महादेव ने अपने लिए भक्तों को पैदा करने के लिए नर-नारी से कबूतर की तरह की सुंदर और शांत संतान को पैदा करने को कहा। यह अल्मा कबूतरी में चित्रित कबूतर जाति के पीछे की लोककथा है।

'शैलूष' में जहाँ तक घुमक्कड़ कबीले का विस्तार था, वहाँ तक मानगुरु और नथिया बंजारिन के प्रेम और शौर्य की कथाएँ गूँजती थीं। उसका वर्णन और लंबी कथा के रूप में उल्लेख इसमें किया है। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में ज्ञानवापी मंदिर को लेकर एक कथा है कि काशी के एक बडे सेठ ज्ञानचंद की बेटी वापी एक दिन मंदिर गई तो किसी ने उसके साथ बलात्कार करके कत्ल कर दिया। तब सेठ ज्ञानचंद ने मंदिर तुड़वाने के लिए औरंगज़ेब को खत लिखा, वहाँ रातों रात मंदिर तुड़वाकर मस्जिद बनवा दी गई। इस मस्जिद के साथ ज्ञानचंद और उसकी बेटी वापी का संबंध होने की वजह से यह मस्जिद ज्ञानवापी मस्जिद कही जाती है। प्रेम से जुड़कर अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। मोतिनी की कथा उसी प्रकार की एक प्रेम कथा है। इसका उल्लेख

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

'चाक' उपन्यास में किया गया है। खेरापतिन दादी जब ये कहानी सुनाती है तब गुलकंदी को यह बहुत अच्छी लगती है। क्योंकि गुलकंदी के मन में भी मोतिनी की तरह एक प्रेमी है, लेकिन समाज में व्याप्त जात-पाँत के डर से वह किसी से कुछ. न कहकर इसे अपने मन में ही दबाकर रखती है. दाने का मोतिनी नल से प्यार करता था। नल आदिम जाति की है और दाने राक्षस, इसलिए नल और मोतिनी के बीच का प्रेम संभव नहीं था। एक दिन अपने पिता दाने से बचाने के लिए मोतिनी नल को मक्खी बनाकर अपनी वाणी में छिपाकर रखता है। इस कथा से जुड़कर गीत भी है "दाने ने कमची लई उठाई / मोतिनी की दीनी खाल उड़ाई जावै / बाबुल तोंय मेरौ सांच न आवै / मारे ते मानुस मिलि नहीं मोरी' 13। 'काला पादरी' में उरांव जनजाति के बीच मानवजाति की वृदधि से जुड़ी एक लोककथा है। कथा इस प्रकार है- भईया बहन को धरमेस ने प्रजनन के रहस्य का ज्ञान कराया। अब तक भईया-बहन के बीच लकडी का एक लट्ठा डालकर एक साथ सोया करते थे। धरमेस ने लडके से कहा कि जब तुम यह लट्ठा पार करोगे तब मानव की वृदधि होगी। जब भाई और बहन के गहरी नींद के बीच धरमेस ने लकड़ी का लट्ठा हटा दिया तभी मनुष्य की प्रथम जोडी की शुरुआत हुई। वहाँ से मानव की वृद्धि शुरू हो गई। लोककथा सामाजिक संरचना का एक बहुत बड़ा आधार होता है। तथाकथित लोककथाओं के आधार पर ही बहुत सारी प्रथाएँ अपना अस्तित्व बनाए रखती हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतर्गत कुलदेवताओं की मान, प्रतिष्ठा आदि ऐसे ही कार्यक्रम हैं जो पूर्ण प्रामाणिक न होकर लोककथा-आश्रित होते हैं। इस प्रकार जाति, जनजाति, अंचल और शिल्प केंद्रित उपन्यासों में लोककथा को भली-भाँति चरितार्थ किया गया है।

मेलों का हमारे सांस्कृतिक जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। इन मेलों में एक जगह पर ही हम विभिन्न संस्कृतियों को मिलते हुए देखते हैं। अतः मेले भावात्मक एकता का प्रतीक भी हैं। मेले गाँव की संस्कृति से अभिन्न रूप में जुड़े होते हैं। मेलों के त्यौहार भी भारतीय लोकजीवन का विशिष्ट अंग है। भारतीय धर्म साधना के परिवेश में वर्ष भर अनेक त्यौहार मनाए जाते हैं। ये भारतीयों के आचार-व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, लोक-विश्वास तथा कर्मकांडों के परिचायक हैं। त्यौहार अपने देश की संस्कृति के पोषक होते हैं। प्रत्येक त्यौहार के पीछे कोई न कोई पौराणिक आख्यान है। भारतीय त्यौहारों में होली, दशहरा, और रक्षाबंधन का विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी, रामनवमी, मकरसंक्रान्ति, शिवरात्रि, दुर्गापूजा आदि त्यौहारों का महत्त्व भी कम नहीं। विवेकी राय ने 'सोनामाटी' में तीन-तीन मेला प्रसंगों का चित्रण किया है। पंचकोसी मेले द्वारा युवा पीढ़ी की दिशाहीन, उत्तरदायित्व हीन हरकत, वारदातों की पहचान, कामाख्या धाम मेले द्वारा हनुमान प्रसाद का बगुला भगत रूप और गंगा दशहरा मेले द्वारा बी.डी.ओ के विकास कैंप की भ्रष्टाचारी भूमिका की पहचान कराई गई है। पर्वों की सार्थकता पर रामरूप प्रश्नचिह्न लगाते हैं, क्योंकि आज आदमी के लिए धर्म मुख्य नहीं अपितु धन ही मुख्य है। रामरूप के अनुसार आज पर्व, त्यौहार, मेला आदि सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक और राजनीतिक सभ्यता के धक्क से टूट रही हैं। त्यौहारों के भीतर छलकनेवाले आनंद और जीवन सौंदर्य अब नहीं है। चाक' में बसंत पंचमी मेले का वर्णन है। इसमें होली से जुड़ी छोटी-छोटी लडकियों के एक रिवाज का वर्णन भी किया गया है। वीरेंद्र जैन कृत 'डूब' उपन्यास में अनेक सिंह के माध्यम से बारहमासे का वर्णन किया गया है। बारह महीनों में होने वाले त्यौहारों का वर्णन और साथ-साथ किस महीने में कौन सी फसल बोई जाती है, इन सबका वर्णन भी उपन्यास में मिल जाता है।

गोविंद मिश्र कृत 'लाल पीली जमीन' में लेखक ने उस संस्कृति का चित्रण किया है जहाँ आदमी को जवानी आते ही मुगदर भांजने, कुश्ती लडने और मारपीट, लडाई-झगड़ा करने का भूत-सा सवार हो जाता है।

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

भारतीय कस्बाई संस्कृति का कठोर और खुरदुरापन इसमें पग-पग पर मिलता है। कुछ त्यौहार उस मुहल्ले के ऊपर छा उठते थे- दिवाली होली, दशहरा आदि। दिवाली के दिन सभी घरों में सफाई होती है और तीन दिन चबूतरों पर लालटेनों की रोशनी में जुआ, कौड़ी, ताश के खेल खेले जाते हैं। होली के अवसर पर हफ्तों पहले रात-रात भर फाग गाने का सिलसिला शुरू हो जाता है। मटकों को नालियों के गंदे पानी से भर लिया जाता है। इसमें लड़कों के साथ-साथ जवान और अधेड़ भी बराबरी से ऊधम मचाते हैं। इसके अलावा इस छोटे शहर के लोगों का सबसे प्रिय त्यौहार था 'मामूलिया' और 'नौरता'। मामूलिया मौके पर बेरी आड़ी तिरछी डगर पर फूल कोसती हुई लड़कियाँ गाती हैं- लइयों लइयों रतन गढ़ फूल बनइयों नोनी ममूलिया" महीनों पहले पत्थर पीसने में लडकियाँ व्यस्त रहती हैं और त्यौहार के दिन जादव जी के चबूतरे को एक छोर से दूसरे छोर तक डिजाइनदार चौकों से भरती हैं। ये त्यौहार बहुत अजीब होते हैं। औरतें पत्थरों को पीसकर रंग देती थीं और उस रंग को चबूतरे पर बिखेर देती थीं। यह मामूलिया और नौरता का त्यौहार है। उस इलाके में यही दो त्यौहार बड़े विशिष्ट हैं।

त्यौहार और उत्सव भारतीय संस्कृति के सूचक हैं। भारतवर्ष में त्यौहारों और पर्वों को हजारों वर्षों से धार्मिक गरिमा प्राप्त है। इनका महत्त्व जनजातियों की सांस्कृतिक परंपरा में भी देखा जा सकता है। बारात में जनजातियाँ यद्यपि अलग अंचलों में निवास करती हैं तथापि उसके पर्व एवं त्यौहार मनाने की रीति में विशेष अंतर नहीं। 'करमा' पर्व सिर्फ काला पादरी' और 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में चित्रित उरांवों का ही नहीं, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में चित्रित थारुओं का भी त्यौहार है। करमा पर्व आने से पहले उरांव और थारू जनजाति के स्त्री-पुरुष झूम-झूमकर नाच-गाना शुरू कर देते हैं। उस अवसर पर लुपुंगा, लेरता, खजूरी, डोलहात, मोरंगा, सोनाहातू आदि गाँव और जंगल के उरांव और थारू जनजाति इसी मजे में डूबे होंगे। करमा के दिन नाच की कोई सीमा नहीं होती और एक-एक दिन एक-एक गाँव दूसरे गाँव जाता है, खूब दारू हंड़िया पीते हैं। बरवाडीह के लोग करमा को एकादशी कहते हैं। उस दिन सोनाहातु के घर के दरवाजे पर लीप पोतकर ढकनी छतनी में पौधे जमाते हैं। धंधे को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'सागर की गलियाँ' में दक्षिण केरल के त्यौहारों का उल्लेख लेखक ने किया है। विषुव केरल के हिंदू घरों का सबसे बडा त्यौहार है। केरल के लोगों का अन्य उत्सव था भरणी । तुरुत्त के पडोसी गाँव के देवी मंदिर में चलनेवाले भरणी उत्सव पर सारे मजहब के लोग जाते थे । 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' में चित्रित बुनकर लोग संघर्षों से गुजरते हुए भी त्यौहार मनाने में कभी पीछे नहीं हटते। बनारस का एक प्रसिदध मेला है गाजीमियाँ का बियाह मेला। यह जेठ महीने के प्रथम रविवार से आरंभ होता है उस दिन मन्नत के मुर्गे काटे जाते हैं। पूरे एक हफ्ते तक गाजी मियाँ का मेला कच्ची बाग, छित्तनपुरा बेनिया बाग आदि जगहों में होता है। बनारस के मुसलमानों का और एक त्यौहार है शब-ए-बारात, इसका उल्लेख भी इसमें किया गया है।

भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों में अपनी अलग और महत्त्वपूर्ण पहचान रखती है। भारतीय संस्कृति की संपन्नता और विविधोन्मुखता का कारण देश में प्रचलित लोकसंस्कृति है। लोकसंस्कृति किसी भी देश की अमूल्य निधि होती है। लोकसंस्कृति में उस देश और प्रदेश का लोकजीवन मूल रूप में पाया जाता है। आज पूरा संसार संक्रमण से गुजर रहा है। संस्कृतियों का परस्पर मेल एवं उनमें टकराहटें हो रही हैं। संवेदनहीनता, मूल्य पतन, कृत्रिमता, आतंक, सांप्रदायिकता, पारिवारिक विघटन, विघटित मानसिकता आदि के कारण मानव जीवन और भी संघर्षरत हो रहा है। इन सबसे मुक्ति के लिए लोकसंस्कृति का होना अनिवार्य है। भूमंडलीकरण के दौर में संसार की लोकसंस्कृतियों में मिलनेवाले कालजयी मूल्यों को अपनाकर एक नई

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

संस्कृति का निर्माण आज की आवश्यकता है। लोकसंस्कृति का बाजारीकरण या प्रदर्शन करने की अपेक्षा उसका अनुसरण एवं परिष्कार जरूरी है। समकालीन आंचलिक उपन्यासों में व्यापक रूप से लोकजीवन, लोकविश्वास एवं लोकसाहित्य का चित्रण हुआ है। लोकजीवन के बाह्य दर्शन वेशभूषा, आभूषण, खान-पान, रीति-रिवाज़, रहन-सहन आदि हैं। इनमें भारतीय संस्कृति के कई संदर्भ विद्यमान हैं। ये प्राकृतिक, सामाजिक और आर्थिक साहचर्य अनुकूल न होने पर भी और अभावग्रस्तता के बीच रहकर भी संतोषप्रद जीवन जीते हैं, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। ये लोग अपने हाथ में जितना है, उतने में खुशहाल जीवन जीने की कोशिश करते हैं। वर्तमान परिवेश में लोकजीवन अनेक परिवर्तनों से गुजर रहा है। कई असामाजिक तत्त्व गाँव, शहर, जाति और जनजाति के स्वाभाविक जीवन को बाधित कर रहे हैं। इसके बावजूद वहाँ की जीवन-शैली अपनी पहचान बनाए रखने की कोशिश कर रही है।

लोकविश्वास के अंतर्गत लोकाचार, परंपरा, रस्म-रिवाज का समावेश होता है। समकालीन आंचलिक उपन्यासों में अंचल एवं जनजातियों में स्थित अनेक धर्मों का चित्रण हुआ है। उनके धार्मिक जीवन में प्रचलित आस्तिकता, संस्कार, पूजापाठ, व्रत, मनौतियाँ, अंधविश्वास धर्मांधता आदि का विस्तृत चित्रण हुआ है। वर्तमान युग में हो रहे अनेकानेक परिवर्तनों के पश्चात भी यहाँ धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आज यहाँ के मार्मिक जीवन में अंतर आ गया है। धर्म में प्रचलित आस्था के पीछे अज्ञान, अशिक्षा जटिल समस्याएँ जटिल प्राकृतिक परिवेश अभावग्रस्तता आदि कारक कार्य करते हैं। इन आंचलिक उपन्यासों से एक बात सामने आती है कि युगीन परिवेश और सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव इनके धार्मिक विश्वासों एवं परंपराओं पर पडा है। आज वहाँ नाममात्र विवाह, जन्म, मृत्यु तथा अन्य छुट-पुट संस्कार ही बचे हैं। वैसे ही समकालीन आंचलिक उपन्यासों में लोकसाहित्य का व्यापक रूप में चित्रण हुआ है। लोकगीत, लोकगाथा लोककथा, लोकनृत्य जैसे लोकसाहित्य केवल मनोरंजन नहीं करते अपितु अंचलों में व्याप्त लोकजीवन को जीवन शक्ति भी प्रदान करते हैं। एक प्रकार से लोकसाहित्य लोकमानस का प्रतिबिंब है। इसमें अंचलवासियों में चेतना उत्पन्न करने की अनूठी शक्ति है। लेकिन एक बात तो सत्य है कि एक ओर आभिजात्य वर्ग लोकसाहित्य की उपेक्षा कर रहा है तो दूसरी ओर उसका दोहन किया जा रहा है।

समकालीन आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से लोकसंस्कृति को बहुत गहराई से तराशा है और बड़ी विविधता से उसकी अभिव्यक्ति भी की है। वर्तमान परिवेश अत्यंत भयावह एवं दिशाहीन बन गया है। इसके चलते लोकसंस्कृति की रक्षा एवं संवर्धन आवश्यक है। लोकसंस्कृति जीवंत संस्कृति है। वर्तमान सांस्कृतिक परिदृश्य जिस प्रक्रिया से गुज़र रहा है, उस परिप्रेक्ष्य में लोकसंस्कृति पर वैचारिक बहस और चर्चा की जरूरत है। इस दृष्टि से देखें तो समकालीन आंचलिक उपन्यास का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है।

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: *2168-2259 (online)*
(https://jetjournal.us/)
Volume 11, Issue 3 – Sep 2021
UGC CARE I

संदर्भ :

1. ज़िंदगीनामा - कृष्णा सोबती पृ.सं.-34
2. अल्मा कबूतरी - मैत्रेयी पुष्पा पृ.सं.- 50
3. सागर की गलियाँ डॉ. रामन नायर पृ. सं.- 69
4. इदन्नमम मैत्रेयी पुष्पा पृ. सं.-15
5. धरती धन न अपना जगदीश चंद्र पृ. सं.- 67
6. मुर्दाघर - जगदम्बा प्रसाद दीक्षित पृ. सं.- 25
7. सोनामाटी - विवेकीराय - पृ.सं.- 346
8. आजकल लोकगीत हमारी जातीय संपत्ति हैं ब्रजरानी शर्मा पृ.सं.- 29
9. तकसीम - द्रोणवीर कोहली पृ. सं. 11
10. जहाँ खिले हैं रक्त पलाश राकेशकुमार सिंह - पृ. सं.- 55
11. शैलूष- शिवप्रसाद सिंह पृ. सं.- 9
12. गगन घटा घहरानी मनमोहन पाठक पृ. सं.- 205
13. चाक- मैत्रेयी पुष्पा - पृ. सं. 253
14. लाल पीली ज़मीन- गोविंद मिश्र पृ. सं.-33

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved